।। श्रीगं ।।

ज्योतिष और ज्योतिषी : एक विवेचन

सुधी पाठकजन,

ईश्वरीय प्रेरणा, मार्गदर्शन एवं आदेशानुसार, मैं, सज्जन कुमार शर्मा, आपके समक्ष षट् वेदांगों में वेदनेत्र स्वरूप स्थित ग्रंथ ज्योतिष से संबंधित संकलित सूत्रों एवं विचारों को प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

मैं सर्वप्रथम गणाध्यक्ष श्री गणपति, वेदाध्यक्ष श्री विष्णु, वेदाधिदेव श्री ब्रह्मा, वेदाधिपति ग्रहों यथा वृहस्पति, शुक्र, मंगल एवं बुध, वेदाग्रणी माता सरस्वती एवं वेदों के वर्तमान रूप के संकलनकर्त्ता श्री वेदव्यास को सादर नमन करता हूँ।

यद्यपि आप सभी ने दैनिक समाचार पत्र/पत्रिकाओं में 'ज्योतिष' संबंधित अनेकानेक स्तम्भ / लेख पढ़े होंगे एवं दूरदर्शन एवं अन्य दूरसंचार माध्यमों से इस विषय पर विज्ञ पंडितजनों के विचारों एवं निष्कर्षों को सुना होगा, मैं, अपने अत्यन्त ही साधारण स्तर की जानकारी एवं अनुभव के आधार पर इस अतिजटिल एवं गहन विषय के कुछ मौलिक तथ्यों को उपरोक्त संकलन के माध्यम से आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। मैं इस लेख के द्वारा ज्योतिष संबंधित सभी प्रधान विषयों यथा संहिता, सिद्धान्त एवं होरा के मूल सिद्धान्तों एवं तथ्यों को आपके समक्ष रखना चाहूँगा।

जनसाधारण के हित में मैं सर्वप्रथम कुछ बहुचर्चित/प्रचलित विषयों पर यथा मारकेश, मंगलीक योग, काल–राहु–सर्प योग, शनि की साढ़ेसाती एवं अढ़ैया, वर–वधू मेलापक आदि पर लेखन आवश्यक समझता हूँ। वर्तमान में उपरोक्त विषयों से संबंधित प्रचलित भ्रांतियों के निवारणार्थ इनके वेदोक्तादि / शास्त्रोक्तादि आधार के साथ – साथ अपवाद एवं परिहार (यथासंभव – जहां भी उपलब्ध हैं) पर परिचर्चा परम आवश्यक है।

प्रथमत: निम्न दो प्रश्नों के उत्तर प्रासंगिक एवं अनिवार्य हैं :-

(१) ज्योतिष क्या है?

(२) ज्योतिषी कौन बन सकता है?

'ज्योतिष' को परिभाषित करने के पूर्व इससे संबंधित अवयवों एवं इसके सृजनचक्र को समझना वाञ्छित है। निम्नांकित 'सनातन धर्मशास्त्र विभाग (प्रमुखत:)' से यह स्पष्ट है कि ज्योतिष वेदों के षट् अंगों में से एक महत्वपूर्ण अंग है, अतएव वेदांतर्गत है। ध्यान दें कि श्रीमद्भगवद्गीता (गीता) में भगवान श्री कृष्ण ने वेद, सूर्य, चंद्र एवं कांतियुक्त एवं शक्तियुक्त किसी भी वस्तु (ग्रहादि सहित) को अपना ही स्वरूप माना है यथा :-

१) रसोऽहमप्सु ..... पौरूषंनृषु (७/८)

२) पिताहमस्य ..... यजुरेव च (९/१७)

३) तपाम्यहमहं ..... सदसच्चाहमर्जुन (९/१९)

४) आदित्यानामहं ..... शशी (१०/२१)

५) यद्यदिभूतिम .... सम्भवम् (१०/४१)

६) अनादिमध्या ..... तपन्तम् (११/१९)

७) यदादित्यगतं .... मामकम् (१५/१२)

८) गामाविश्य ..... रसात्मक: (१५/१३)

९) सर्वस्य चाहं ..... चाहम् (१५/१५)

मनुस्मृति (मस्०) में भी वेदों को प्रजापति ब्रह्मा द्वारा ही प्रकट माना गया है यथा ''अग्नि वायु ... सामलक्षणम (१/२३)। उपनिषदों एवं अन्य स्मृतियों में भी वेदों को परमात्मतत्व के रूप में ही प्रतिपादित किया गया है। अतएव स्पष्टत: यह स्वयंसिद्ध है कि वेद 'परमात्मतत्व' विषय है।

सम्पूर्ण वेद अध्यात्म विषयक ज्ञान के प्रदाता है, यथा :-

'' सर्गाणामादिरन्तश्च ... प्रवदतामहम्'' (गीता १०/३२), '' दण्डो दमयतामस्मि .. ज्ञानवतामहम्'' (गीता १०/३८) एवं '' सर्वेषामपि .... ह्यमृतंतत: (मस्० - १२/८५)आदि श्लोकों से भी वेद अध्यात्मपरक विषय एवं वेदादि ईश्वरीय धारणा से ओतप्रोत सिद्ध हुए। निष्कर्षरूप से चूँकि वेद ईश्वरतत्व निहित सिद्ध है, तद्वत् 'ज्योतिष' भी परमात्मतत्व विषय ही सिद्ध हुआ।

सनातन धर्मशास्त्र विभाग (प्रमुखत:)

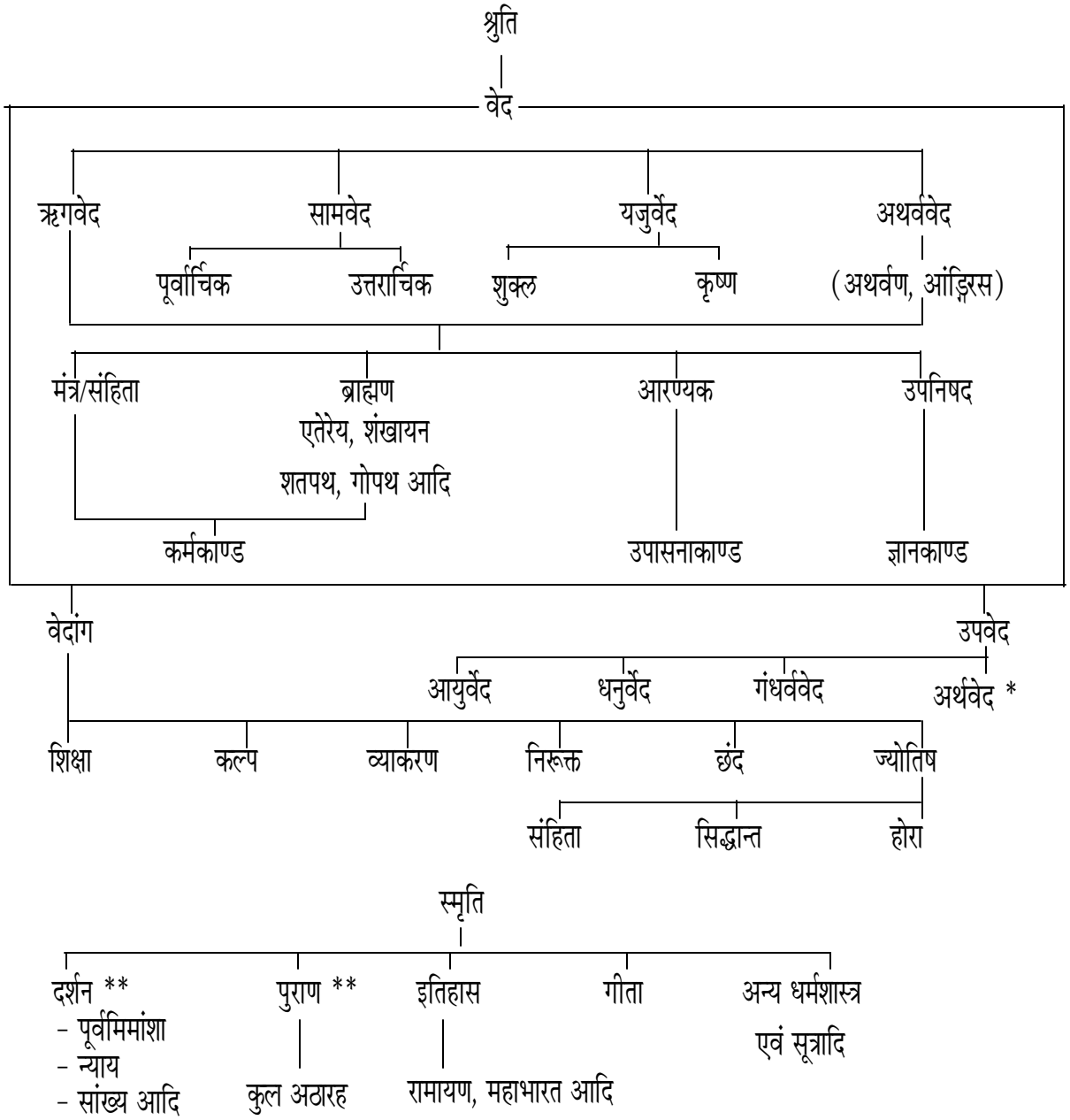

* मतान्तर-स्थापत्यवेद

** मतान्तर - इन्हें स्वतंत्र विभाग माना गया है।

''अथवा बहुनैतेन .... स्थितो जगत्'' (गीता १०/४२) एवं ''ऋतंच सत्यं..... मथोस्वः (ऋग्वेद १०/१९०/१) आदि श्लोकों से सम्पूर्ण जगत (ग्रहों सहित) पराशक्ति द्वारा निर्मित, पोषित एवं धारित सिद्ध हुआ।

अतएव सृष्टिसंचालन इसी पराशक्ति के नियमों के अधीन है। सम्पूर्ण जगत् इन्हीं नियमों के तहत चेष्टा करता है। ग्रहादि कर्म विभाग के निश्चित् सिद्धान्तानुसार नियत समय पर निर्दिष्ट फल प्रदाता का स्वरूप धारण करते हैं। इस प्रकार जीवमात्र के संदर्भ में वर्तमान, पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म तथा संचित प्रारब्ध एवं क्रियमाण कर्म सिद्धान्त निरंतर, निर्लेप एवं त्रुटिहीन रूप से कार्य करते हैं एवं सृष्टिचक्र चलता रहता है।

''वासांसि ..... नवानिदेही'' (गीता २/२२), ''प्राप्येपुण्य ..... योगभ्रष्टोभिजायते'' (गीता ६/४१), ''प्रयत्ना .... परांगतिम्'' (गीता ६/४५), ''शरीर ..... निवाशयात'' (गीता १५/८), ''न त्वेवाहं ... परम्'' (गीता २/१२), ''बहूनिमे..... परन्तप'' (गीता ४/५), ''मामुपेत्य ..... गताः'' (गीता ८/१५), ''आब्रह्मभुवनाल्लोकाः ... विद्यते'' (गीता ८/१६), ''बहूनां ..... सुदुर्लभः'' (गीता ७/१९), ''धूमोरात्रि ..... पुनः'' (गीता ९/३), ''अहं हि ... माम्'' (गीता ९/२४ - २५) एवं ''देहादुत्कर्मणं ..... रात्मनः'' (मस्० ६/६३), आदि श्लोकों से पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म सिद्धान्त सिद्ध होता है। श्रीरामचरितमानस में भी गोस्वामी तुलसीदास जी ने पुनर्जन्म के प्रसंग को कुछ इस प्रकार उद्धृत किया है :-

'''प्रथम जन्म के ..... उत्तरकाण्ड ९६ (क)

''तेहि कलियुग ..... उत्तरकाण्ड ९६ (ख) (१)

''सती मरत हरिसन .... बालकाण्ड ६४ (३)

ठीक इसी प्रकार'' स्वभावजेन ... मायया'' (गीता १८/६०-६१), ''इह .... रूपविपर्ययम्'' (मस्०

११/४८), ''शुभाशुभफलं ..... विद्यात्प्रवर्तकम्'' (मस्० १२/३-४) एवं ''यादृशेन ..... पाश्नुते'' (मस्० १२/८१) आदि श्लोकों से कर्मों (भूत एवं वर्तमान) के फल प्राप्ति (वर्तमान या भविष्य) का सिद्धान्त सिद्ध होता है। सहज भाषा में कहें तो प्रत्येक जीव को उसके द्वारा किये गये कर्म के फल को प्राप्त करना अनिवार्य है। इस फल की प्राप्ति हेतू जीव को पुनर्जन्म भी लेना पड़ सकता है। इस फलचक्र की स्वभाविक क्रिया को निष्कंटक एवं दोषरहित चलाने के कर्म विभाग को ग्रहाधीन किया गया जो सम्पूर्ण जगत् का परिशुद्ध अवयव है। ''न हि प्रकृतिजैगुणैः ..... (गीता ३/५) के अनुसार प्रत्येक जीव प्रतिक्षण कर्मयुत रहता है अतएव कर्म एवं तद्रूप फलचक्र एक निरंतर चलित शाश्वत् क्रिया है। इस विषय पर मैंने कुछ इस प्रकार भी लिखा है कि :-

''आज का बोया कल ही काटूँ, बेशक, जरूरी नहीं,
कल के बीज मैंने कहीं कल भी बोये हैं।
मिले फल वही, हो समय सही, का कर हिसाब,
'माली' ने आसमां में कहीं बादल भी पिरोये हैं।''

उपरोक्त विश्लेषण का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि प्रत्येक जीव, जन्म मृत्यु के चक्र में चिरकाल तक पड़ा ही रहगेा वा वह इच्छित / स्वतंत्र कर्म को करने को सक्षम ही नहीं है।

''कर्मण्ये ..... स्त्वकर्मणि'' (गीता २/४७), ''सहसर्वाः .... सिद्धये'' (मस्० ७/२१४-२१५), ''धर्म एव ..... वर्धात्'' (मस्० ८/१५), ''एक एव ... गच्छति'' (मस्० ८/१७), ''अकामतः ... पृथग्विधैः'' (मस्० ११/४५-४६) आदि श्लोकों से प्रायश्चित नैमितिक कर्म एवं संचित कर्मफलरूप परिणाम / पापराशि के परिवर्तन का सिद्धान्त प्रतिपादित होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने शास्त्रोक्त / वेदोक्त ज्ञानरूप क्रियाओं द्वारा पापों के क्षय के सिद्धान्त को स्थापित किया है यथा :-

''देवान्वभावयतानेन .... एव सः'' (गीता ३/११-१२), ''यो यो ..... विहितान्हितान्'' (गीता ७/२१-२२), ''अपि चेदसि... भस्मसात्कुरूतेतथा'' (गीता ४/३६-३७) एवं ''यः शास्त्रविधि ... कर्तुमिहार्हसि'' (गीता १६/२३-२४)।

अतएव शास्त्रोक्त एवं वेदोक्त विधान को प्रमाण मानकर उनके अनुसार कर्म करने वाले व्यक्ति के पापों का नाश होकर शुभफलों की प्राप्ति संभव है।

ईश्वरीय विशेष कृपा को अपवाद मानें तो सारांश में साधारणतया स्वयंभू परमात्मा भी जीवमात्र को उसके कर्मानुसार ही फल देते हैं। उस पराशक्ति ने कर्म को ही कसौटी माना है एवं तद्नुसार जीवमात्र निहित फल की प्राप्ति के लिए बाध्य है। वेद एवं शास्त्रोक्त प्रायश्चित् विधान पापराशि को भस्मीभूत करने में पूर्णतया सक्षम है, ऐसा कहा गया है। आत्मबल एवं आत्मकल्याण के संदर्भ में श्री भगवान ने बड़ी ही सुन्दरता से कुछ ऐसा कहा है कि ''यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है'' यथा ''उद्धरेदात्मना ... शत्रुवत्'' (गीता ६/५-६)। इसी आत्मा को इंद्रियों एवं मन से भी सूक्ष्म बतलाकर इसी के द्वारा उद्धार का मार्ग बतलाया गया है यथा ''इन्द्रियाणि .... दुरासदेम्'' (गीता ३/४२-४३)। इस विषय पर (आत्मबल) मैंने भी कुछ ऐसा लिखा है कि :-

''वो तो आयेंगी उसे बचाने को, पूरा जोर लगाकर,
वक्त पर, बेवक्त पर
फलेगा, फुलेगा या गिरेगा बारिशों में,
निर्भर करता है सिर्फ दरख्त पर''

उपरोक्त विवेचन का सरल रूप में मर्म इस प्रकार है :-

- वेद परमात्मा का ही स्वरूप है।
- ज्योतिष वेदांग होने के कारण परमात्म तत्वक विषय सिद्ध हुआ।

- जीवमात्र जन्म, मृत्यु एवं पनुर्जन्म को अपने कर्मानुसार प्राप्त हो सकते हैं।
- कर्मफल अवश्यम्भावी है। फल की प्राप्ति विभिन्न समयों एवं स्वरूपों में संभव है।
- जीवमात्र कर्म करने में स्वतंत्र है (क्रियमाणकर्म)। संचित पापराशि वेदोक्त एवं शास्त्रोक्त ज्ञान योग द्वारा भस्मीभूत होती है, ऐसा कहा गया है।
- मनुष्य के कर्मफलविधान (जो निर्धारित है) ग्रहाधीन है एवं ज्योतिष इन संभावित फलों के स्वरूप एवं प्राप्तिकाल के ज्ञान को प्रतिपादित करती है।

ज्योतिष की विभिन्न शाखाओं/विभागों यथा संहिता, सिद्धान्त एवं होरा पर चर्चा इस समय उतनी वांछित नहीं है जितना की ऊपर किये गये दूसरे प्रश्न का उत्तर देना।

चूँकि ज्योतिष परमात्म स्वरूप है एवं अध्यात्म विषयक ग्रंथ है, बिना किसी संशय के यह माना जा सकता है कि इसकी समझ, गहराई का भान एवं इसके द्वारा भविष्य का ज्ञान, ईश्वर की परम् कृपा के बगैर संभव ही नहीं है। काफी गौर करने का विषय है कि अर्जुन जो श्री भगवान का ही अंशावतार है, उनके विराट् स्वरूप को अपने साधारण नेत्रों से देखने में अक्षम था। श्री कृष्ण ने विराट् स्वरूप के दर्शनार्थ लालायित अतिश्रेष्ठ गुडाकेश अर्जुन को दिव्यचक्षु प्रदान किये जिनके द्वारा उसने ईश्वर के ऐश्वर्य एवं प्रभाव के दर्शन किये, यथा 'न तु मां ... योगमैश्वरम्' (गीता ११/८)। ठीक इसी प्रकार ईश्वरीय तेजोमय इस विद्या के वास्तविक स्वरूप, प्रभाव एवं उपादेयता को समझ पाने के लिए हमें भी अर्जुन के गुणों को आत्मसात् करना ही पड़ेगा। यह स्पष्ट है कि बिना ईश्वरीय सत्ता के सहयोग के इस वेदांग में पारंगत होना संभव ही नहीं है। अतएव श्रद्धा, चारित्रिक दृढ़ता, बुद्धि, चातुर्य, नीडरता, मनन एवं ध्यानशक्ति, ज्ञानलालसा, स्मृति, स्वस्थता, मानसिक स्थिरता, आत्मिक बल एवं ज्ञान, सम्यक् दृष्टि एवं लोकहित भावना के साथ – साथ ईश्वर की अनुकम्पा ही किसी व्यक्ति को 'ज्योतिषी' बना सकती है अन्यथा उसका कोरा ज्ञान मात्र गणित तक ही सिमट कर रह जायेगा एवं फलित ज्योतिष में असफलता ही प्राप्त होगी।

उपरोक्त गुणों से हीन व्यक्ति भी ईश्वर के प्रति अटूट श्रद्धा भक्ति एवं तद्फलस्वरूप प्राप्त अनुकम्पा से शत-प्रतिशत सही भविष्यवाणी करने में निश्चित् ही सक्षम हो सकता है। ज्योतिषी इसी ज्ञान एवं कृपास्वरूप प्राप्त निष्कर्ष को जातक के समक्ष रखकर उसे वेदोक्त शुभकर्म एवं परिष्कृत भक्ति की सलाह देता है तथा उसे अन्य सभी प्रकार के अशुभ कर्मो के प्रति सावधान भी करता है। सारांश में - ''परमात्मा के चहेते, दास एवं उसके द्वारा बतलाये गये पथ के अनुयायी को 'ज्योतिषी' कहा जाये तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।''

- सज्जन कुमार शर्मा, कोलकाता